४६

कर्म सिद्धान्त : वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में

☐ डॉ. महावीरसिंह मुड़िया

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक संसारी आत्मा कर्मों से बद्ध हैं। यह कर्म बन्ध आत्मा का किसी अमुक समय में नहीं हुआ, अपितु अनादि काल से है। जैसे खान से सोना शुद्ध नहीं निकलता, अपितु अनेक अशुद्धियों से युक्त निकलता है, वैसे ही संसारी आत्माएँ भी कर्म बन्धनों से जकड़ी हुई हैं।

सामान्य रूप से जो कुछ किया जाता है, वह कर्म कहलाता है। प्राणी जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है। कर्म के अनुसार फल को भोगना नियति का क्रम है। परलोक मानने वाले दर्शनों के अनुसार मनुष्य द्वारा कर्म किये जाने के उपरान्त वे कर्म, जीव के साथ अपना संस्कार छोड़ जाते हैं। ये संस्कार ही भविष्य में प्राणी को अपने पूर्वकृत कर्म के अनुसार फल देते हैं। पूर्व कृत कर्म के संस्कार अच्छे कर्म का अच्छा फल एवं बुरे कर्म का बुरा फल देते हैं। पूर्वकृत कर्म अपना जो संस्कार छोड़ जाते हैं, और उन संस्कारों द्वारा जो प्रवृत्ति होती है, उसमें मूल कारण राग और द्वेष होता है। किसी भी कर्म की प्रवृत्ति राग या द्वेष के अभाव में असम्भावित होती है। अतः संस्कार द्वारा प्रवृत्ति एवं प्रवृत्ति द्वारा संस्कार की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। यह परम्परा ही संसार कहलाता है।

जैन दर्शन के अनुसार कर्म संस्कार मात्र ही नहीं है, अपितु एक वस्तुभूत पदार्थ है जिसे कार्मण जाति के दलिक या पुद्गल माना गया है। वे दलिक रागी द्वेषी जीव की क्रिया से आकृष्ट होकर जीव के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाते हैं। यद्यपि ये दलिक भौतिक हैं, तथापि जीव के कर्म अर्थात् क्रिया द्वारा आकृष्ट होकर जीव के साथ एकमेक हो जाते हैं।

कर्मबन्ध व कर्ममुक्ति :

जैन कर्मवाद में कर्मोपार्जन के दो मुख्य कारण माने गये हैं—योग और कषाय। शरीर, वाणी और मन के सामान्य व्यापार को जैन परिभाषा में 'योग' कहते हैं। जब प्राणी अपने मन, वचन अथवा तन से किसी प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब उसके आसपास रहे हुए कर्म योग्य परमाणुओं का आकर्षण होता है। इस प्रक्रिया का नाम **आस्रव** है। कषाय के कारण कर्म परमाणुओं का आत्मा से मिल जाना बंध कहलाता है। कर्मफल का प्रारम्भ ही कर्म का उदय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है। ज्यों-ज्यों कर्मों का उदय होता जाता है, त्यों-त्यों कर्म आत्मा से अलग होते जाते हैं। इसी प्रक्रिया का नाम **निर्जरा** है। जब आत्मा से समस्त कर्म अलग हो जाते हैं तब उसकी जो अवस्था होती है, उसे **मोक्ष** कहते हैं।

वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर कर्म सिद्धान्त :

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्युत चुम्बकीय तरंगों (Electromagnetic Waves) से ठीक उसी प्रकार भरा पड़ा है जिस प्रकार सम्पूर्ण लोकाकाश कार्मण वर्गणा रूप पुद्गल परमाणुओं से भरा हुआ है। ये तरंगें प्रकाश के वेग से लोकाकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की ओर गमन करती रहती हैं। इन तरंगों की कम्पन शक्ति बहुत अधिक, यहाँ तक कि X-Rays की कम्पन शक्ति ($१०^{१३}$ से $१७^{१७}$ किलो साइकिल प्रति सैकण्ड) से करोड़ों गुनी ज्यादा होती है। तरंगों की आवृत्ति (frequency), n, तथा प्रकाश के वेग (c) में निम्न सम्बन्ध है—(λ=तरंग की लम्बाई)=Wavelength

$$c=n\lambda$$

अब एक खास आवृत्ति (frequency) की विद्युत चुम्बकीय तरंगों को एक प्राप्तक द्वारा पकड़ने के लिए उसमें एक ऐसे दौलित्र (oscillator) का उपयोग किया जाता है कि यह उन्हीं आवृत्ति पर कार्य कर रहा हो। इस विद्युतीय साम्यावस्था (Electrical resonance) के सिद्धान्त से वे आकाश में व्याप्त तरंगें, प्राप्तक (Receiver) द्वारा आसानी से ग्रहण करली जाता हैं।

ठीक यही घटना आत्मा में कार्मण-स्कन्धों के आकर्षित होने में होती है। विचारों या भावों के अनुसार मन, वाणी या शारीरिक क्रियाओं द्वारा आत्मा के प्रदेशों में कम्पन उत्पन्न होते हैं जिसे पहले 'योग' कहा गया है। अर्थात् योग शक्ति से आत्मा में पूर्व से उपस्थित कर्म रूप पुद्गल परमाणुओं (जो आत्मा के प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाही होकर पूर्व से प्रवर्तमान थे) में कम्पन होता है। इन कम्पनों की आवृत्ति की न्यूनाधिकता, कषायों की ऋजुता या घनी संक्लेशता के अनुसार होती है। शुभ या अशुभ परिणामों से विभिन्न तरंग लम्बाइयों की तरंगें आत्मा के प्रदेशों से उत्पन्न होती रहती हैं और इस प्रकार की कम्पन क्रिया से इसे एक दौलित्र (oscillator) की भांति मान सकते हैं, जो लोकाकाश में उपस्थित उन्हीं तरंग लम्बाई के लिए साम्य (tunned या resonance) समझा जा सकता है। ऐसी स्थिति में भाव कर्मों के माध्यम से, ठीक उसी प्रकार की तरंगें आत्मा के प्रदेशों से एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं, और आत्मा अपने स्वभाव गुण के कारण विकृत कर नयी-नयी तरंगें पुनः आत्मा में उत्पन्न करती है। इस तरह यह स्वचालित दौलित्र (self oscillated oscillator) की भांति व्यवहार कर नयी-नयी तरंगों को हमेशा खींचता रहता है। कर्मवाद में यह **आस्रव** कहा गया है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ये पुद्‌गल परमाणु आत्म-प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध स्थापित ही करते हैं न कि वे दोनों एक-दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे सम्बन्ध के बावजूद भी जीव, जीव रहता है और पुद्‌गल के परमाणु, परमाणु रूप में ही रहते हैं। दोनों अपने भौतिक गुणों (Fundamental properties) को एक समय के लिए भी नहीं छोड़ते। यह **कर्मबन्ध** है।

यदि आत्मा के प्रदेशों में परमाणुओं की कम्पन-प्रक्रिया ढीली पड़ने लगे, जो कि योगों की सरलता से ही सम्भव हो सकती है, तो बाहर से उसी अनुपात में कार्मण परमाणु कम आएँगे अर्थात् आकर्षण क्रिया ही न होगी, अर्थात् संवर होना शुरू होगा। जब नई तरंगों के माध्यम से पुद्‌गल परमाणुओं का आना बन्द हो जाता है तो पहले से बैठे हुए कार्मण परमाणु अवमंदित दोलन (Damped oscillation) करके निकलते रहेंगे। अर्थात् प्रतिक्षण **निर्जरा** होगी और एक समय ऐसा आयेगा जब प्राप्तक दौलित्र (oscillator) कार्य करना बन्द कर देगा। निर्विकल्पता की उस स्थिति में योगों की प्रवृत्ति एक दम बन्द हो जायगी और संचित कर्म शेष न रहने पर फिर प्रदेशों की कम्पन–क्रिया का प्रश्न ही नहीं उठता, अर्थात् कर्मों की निर्जरा हो जायेगी। सम्पूर्ण कर्मों की निजीर्णावस्था ही **मोक्ष** कहलाती है।

इस प्रकार तरंग सिद्धान्त (wave theory) के विद्युतीय साम्यावस्था (Electrical resonance) की घटना से आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष भलीभांति समझा जा सकता है।

टैलीपैथी

विचार करते समय मस्तिष्क में विद्युत उत्पन्न होती है। इस विचारशक्ति की परीक्षा करने के लिए पेरिस के प्रसिद्ध डॉ० वेरडुक ने एक यन्त्र तैयार किया। एक कांच के पात्र में सुई के सदृश एक महीन तार लगाया गया और मन को एकाग्र करके थोड़ी देर तक विचार-शक्ति का प्रभाव उस पर डालने से सुई हिलने लगती है। यदि इच्छा शक्ति निर्बल हो तो उसमें कुछ भी हलचल नहीं होती। विचार शक्ति की गति बिजली से भी तीव्र है—लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकण्ड। जिस प्रकार यन्त्रों द्वारा विद्युत तरंगों का प्रसारण और ग्रहण होता है और रेडियो, टेलीफोन, टेलिप्रिन्टर, टेलिविजन आदि विद्युत को मनुष्य के लिए उपयोगी व लाभप्रद साधन बनाते हैं, इसी प्रकार विचार-विद्युत की लहरों का भी एक विशेष प्रक्रिया से प्रसारण और ग्रहण होता है। इस प्रक्रिया को टैलीपैथी कहा जाता है। टैलीपैथी के प्रयोग से हजारों मील दूरस्थ व्यक्ति भी विचारों का आदान-प्रदान व प्रेषण-ग्रहण कर सकते हैं। भविष्य में यही टैलीपैथी की प्रक्रिया सरल और सुगम हो जनसाधारण के लिए भी महान् लाभदायक सिद्ध होगी, ऐसी पूरी सम्भावना है। ☐

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org